© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 04 , Issue : 13 | October – December 2017

भीष्म साहनी के उपन्यास में धार्मिक समस्या

योगिता रानी, yogitakharb40@gmail.com

प्रस्तावना

भारतीय तत्कालीन समाज में अनेक समस्याएँ मौजूद थी। इन समस्याओं के निर्मुलन हेतु एक ओर स्वतंत्रता आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था। तो दूसरी ओर समाज सुधार की आवाद बुलंद थी। समाज द्वारा युगों से शोषित व पीडित वर्गों को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए रूढिवादी मान्यताओं एवं रीति रिवाजों पर भीषण प्रहर किये जा रहे थे। अनेक समाज सुधारक एवं समाज चिंतक सिर पर कफन बाँधकर इस क्षेत्र में उतर आये पुरुष कृत अत्याचारों से पीडित नारी और अबिजात्य वर्ग द्वारा शोषित अछूत इस सुधार के केन्द्र रहे। पाश्चिक दासता से मुक्ति दिलाने के लिए अनेक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ। देश में सर्वत्र समाज सुधार एवं वैचारिक परिवर्तन की लहर सी दौड गयी। समाज से ही चेतना पानेवाला संवेदनशील साहित्यकार इस परिवर्तन से कैसे अछुता रह सकता था ? उसने कला और साहित्य के माध्यम से सामाजिक समस्याओं व परिस्थितियों को अभिव्यक्त किया। नारी अस्पृश्यता और मानव जीवन से सम्बन्धित शायद ही कोई ऐसी समस्या हो, जो इन साहित्यकारों के हाथों न पदी हो। भीष्म साहनीजी ने भी समाज में स्थित अनेक समस्याओं को प्रस्तुत करके उसके समाधान करने का प्रयास किया है।

ISSN : 2348-5612 © URR
9 770234 856124

धार्मिक समस्याएँ

धर्म भारतीय जीवन का प्राण रहा है। भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि में से धर्म का ही प्राधान्य परिलक्ष्यता होता है। समाज, राजनीति तथा संस्कृति का धार्मिक दृष्टिकोण से विश्लेषण होने के कारण अन्य तत्वों को धर्म के सहयोगी रूप में जीवन का उद्देश्य स्विकार किया गया है। इस प्रकार धर्म तो सामाजिक गतिविधियों से इतना सम्बन्ध है कि उसे भारतीय जीवन से भिन्न नहीं किया जा सकता है। धर्म की इतनी अधिक प्रधानता के कारण, कालान्तर में समाज एवं संस्कृति का विघटन होने लगा था, इससे धर्म के साधना, चिन्तन, उपासना, भक्ति एवं अध्यात्मिक पक्ष के स्थान पर व्यावहारिक पक्ष प्रमुख होने लगा। सुनिश्चित सिद्धांतों एवं स्थिर मान्यताओं के अभाव में धर्म विभिन्न व्यक्तियों, सम्प्रदायों, संस्थाओं इत्यादि के शोषण, अत्याचार तथा हीन्विचारों के रूप में विकसित होने लगा। जो धर्म मध्ययुग में निराश एवं, हताश जनता के लिए नवजीवन एवं स्फुर्ति प्रदायक रहा था, वहीं आधुनिककाल युगमें अन्धविश्वासों, विकृतियों, मिथ्याडम्बरों तथा कुरीतियों का समुच्चय बन गया था, लेकिन आधुनिक आन्दोलनों ने युग के गतिशील परिवर्तनों के साथ धर्म विषयक विचारों में सभी नविनताका समावेश किया। धर्म जैसी पवित्र वस्तु को इतने निम्न स्तर पर देखकर साहनी जी ने धार्मिक अव्यवस्थाओं के निराकरण का प्रयास किया है और धर्म के बाह्यडम्बरों, दार्हिम्क अन्धविश्वासों, रूढ़ियों एवं कुरीतियों, धर्म के ठेकेदारों की कुत्सित मनोवृतियों तथा धर्म के नाम पर पाखण्डों, अनैतिकता आदि का विरोध किया है। साहनी जी ने इस समस्या का धर्म की दुर्दशा तथा धार्मिक नेताओं के पतित भ्रष्टाचारी जीवन के रूप का आकलन किया है।

साम्प्रदायिक समस्या

साम्प्रदायिक समस्या यह हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायों से है। भारत में हिन्दूत्व और इस्लाम के झगडे बहुत पुराने समय से चले आ रहे है। अतः हिन्दू मुस्लिम एकता की समस्या नई नहीं है, उसका अपना इतिहास है। इतिहास यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दू–मुस्लिम समस्या का आधार धार्मिक नहीं है। वरना उसका विशिष्ट राजनीतिक पहलू है। जिसने एकता के किसी भी प्रयत्न को कारगर सिद्ध नहीं होने दिया। ऊपरी तौर पर उसका रूप धार्मिक दिखाई देता है, लेकिन वास्तव में धर्म को तो राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए, मात्र हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया। यदि राजनीतिक पहलू मूल में नहीं होती तो केवल धर्म के कारण इन दो जातियों में इतना वैमन्स्य कभी नहीं बढता। इसको बढाने का काम आगे अंग्रेजों ने किया है।

भीष्म साहनी के तमस में साम्प्रदायिक समस्या उभर आई हैं। उनके अन्य उपन्यासों में भी पूर्व पंजाब की धरती पर घटे साम्प्रदायिक दंगे उभर आए है, परन्तु, 'तमस' उपन्यास में साम्प्रदायिक समस्या का जो विकार रूप जितनी सिद्धता और उबाल के साथ पनपता हुआ नजर आता है, उतनी शिद्धत और उबले के साथ अन्य किसी उपन्यास में नजर नहीं आता।

धार्मिक नियमों का विरोध या अवहेलना करते हैं, तो साम्प्रदायिक दंगे भडक उठते हैं। इसी सांप्रदायिक समस्या को साहनी जी 'तमस' उपन्यास में उजागर करते हैं। 'तमस' के सन्दर्भ में रमेश उपाध्याय के विचार 'समाज में व्याप्त अज्ञान और अन्धविश्वास ने लोगों को इतना धर्मान्ध बना दिया था, कि विवेक के लिए कोई गुंजाईश नहीं रह गई थी और दोनों तरफ से विवेकशील लोग अपना प्रभाव खो चुके थे।

उनके समझाने बुझाने से साम्प्रदायिक तनाव कम नहीं हो सकता था और अंग्रेज सरकार उस तनाव को दूर करने में समर्थ होते हुए भी उसे दूर करना नहीं चाहती थी। साम्प्रदायिक विष इतना फैल चुका था, कि धर्म और साम्प्रदायों में आस्था न रखने वाले कम्युनिष्टों का भी मनोबल टूटने लगा था। यह वाकई एक जटील परिश्ति है और इसको समझने में किसी तरह

का सरलीकरण सहयक नहीं हो सकता। इसलिए भीष्म साहनी ने बहुत सी चीचों का फालतूपन उजागर करते हुए, उन तत्वों की तरफ पाठक का ध्यान खींचने की चेष्टा की है, जो जनता को अज्ञान में रखते है और अज्ञान अंधकार का लाभ उठाकर उसकी भावनाओं को गलत दिशा में मोड देते हैं।

उपन्यास 'तमस' में साम्प्रदायिकता का विषैला जहर निम्नवर्ग के लोगों को अपना शिकार बनता है। इस संदर्भ में वीरेन्द्र मोहन जी के विचार स्पष्ट दिखाई देते है। इस साम्प्रदायिक घृणा का शिकर कौन होते हैं ? उसका शिकर होते हैं इत्र बेचनेवाला गरीब मुसलमान, हरनामसिंह और उसका लडका इक्बलसिंह, कांग्रेसी अक्खड जरनैल जो अभावग्रस्त रहता है, लाला लक्ष्मीनारायण का हिन्दू नौकर मिलखी और मानसिक रूप से कमजोर नत्थु। रणवीर अपने जाती भाई हलवाई को भी नहीं छोडता। इसी विषय के बारे में वीरेन्द्र जी का विचार प्रस्तुत है – यह है साम्प्रदायिकता का जहर जिसमें सामान्यजन तबाह होता है। उपर्युक्त विचारों से यह दिखाई देता है, की सर्वहारा वर्ग के लोग साम्प्रदायिक जहर के शिकार बन जाते हैं। सम्प्रदाय मनुष्य के दिमाग को विकृत बना देता है, उस विकरालता में मनुष्य कुछ भी करने से पीछे नहीं हटता। ऐसे अनेकों उदाहरणों की प्रस्तुती 'तमस' उपन्यास में दिखाई देती है।

'तमस' के जरिए, भारतीय समाज के मनोजगत पर छायी हुई उस धर्मान्धता के सांप्रदाय के अंधविश्वासों की गुंत्थियों का पर्दाफाश बाड़ी कुशलता से भीष्म साहनीजी ने किया है। इस संदर्भ में यह विचार नितांत उल्लेखनीय है 'ऊपर से देखने पर तमस की राजनीति अंग्रेजो की है, हिन्दू मुसलमान और सिखो का तो अरजनीतिक आचरण है। वे नस्ल, जाति और धर्म के उन्माद में अलग रहने को ही अपनी अपनि रजनीति मान लेते हैं। तमस में राजनीति और धर्म के अतर्विरोध को स्पष्ट किया गया है। दहर्म स्वतः स्फूर्त उन्मद में फलता फूलता है। राजनीति, सामाजिक चेतना के विकास से पैदा होती है। यह चेतना परिस्थिति और परिवेस सापेक्ष होती है और विकासमान होती है। उन्माद का आचरण अराजक होता है जिसकी परिणति असमाजिकता में होती है, मानवद्रोह में होती है। जब की चेतना पुराना इतिहास है, संस्कृति है, उसके अपने शास्त्र है। साहनी ने 'तमस' में राजनीति के निमित्त धर्म का पर्दाफाश किया है।

भीष्म साहनीजी के यह विचार उपर्युक्त विचारों से समानता रखते हैं 'जहाँ पर हम अपने धर्म को अपने राजनीति का अंग बना लेते हैं, वहीं पर हम साम्प्रदायिकता के वास्तविक, भयावह रूप को प्रस्तुत करने लगते हैं। राजनीति का मुख्य लक्ष्य सत्ता ग्रहण करना बन गया है। जब सत्ता ग्रहण कर पाने की होड में हम धर्म की आड लेते हैं, तब हम एक और धर्म के वास्तविक स्वरूप को विकृत करते हैं, उसकी मानवियता, उसके सदुपदेश सहिष्णुता आदि को तो तक पर रख देते हैं, दूसरी ओर उन तत्वों को प्राथमिकता देने लगते हैं जो एक जाति को दूसरी जाति से अलग करते हैं, जैसे पूजा पाठ की विधियों धर्माचार व्रत, उपवास, आदि। इस तरह जब हम अपनी जाति की अलग पहचान बनाना चाहते हैं, तब एक व्यक्ति इन्सान न रहकर, एक हिन्दू एक मुसलमान, एक सिख आदि में बदल जाता है। सत्ता की होड इस जातीयता की भावना को उग्र और आक्रामक बनती है। तब, धर्म के नम पर हमारे सभी कुकर्म हिंसा, बर्बरत, घृणा, द्वेष सभी यथोचित ठहराए जाने लगते हैं। उस तरह साम्प्रदायिकता का विकराल रूप सामने आने लगता है। उपर्युक्त विचारों से प्रमाणित होता है, कि लेखक धर्म एवं राजनीतिक के गठबंधन की गुथियों की पोल खोलते हुए उन सत्ताधारी राजनीतिज्ञों के स्वार्थ को दर्शाना चाहते हैं, जो धर्म की आड लेते हुए राजनीतिक साजिश रचते है। इसलिए धर्म और राजनीति एक ही सिक्के के दो मोहरे कहा जाये तो गलत साबित नहीं होगा। राजनीति और धर्म के संबंध में एक और आज का सर्वोत्तम राममंदिर और बाबरी मस्जिद् का मामला राजनीति का मोहरा बना हुआ है। आजादी के बाद का भारत उसी साम्प्रदायिक जहर की अंधेरी खोह में जा रहा है। भारतीय समाज के जनमानस के मन और मस्तिष्क पर आज भी तमस की विषैली साम्प्रदायिकता अमिट छाप की तरह छायी हुई है। साहनीजी ने इस समस्या को बडी कुशलता एवं जागरूकता के साथ उसके रेशे को खोलकर रखा है। उन्होंने साम्प्रदायिकता को एक ऐसी समस्या मानी है, जो मनुष्य के दीमागी संतुलन को बिगाडकर नष्ट कर रही है। यह साम्प्रदायिक जहर पूरे विश्व के जनमानस के लिए बहुत घातक सिद्ध होता है। आज भी स्वतन्त्र भारत इस साम्प्रदायिकता की आग में जल रहा है। यह साम्प्रदायिकता मनुष्य के मन और मस्तिष्क में सन्देह, अविश्वास, असुरक्षा और घृणा जैसी भावनाओं को जन्म देती है। इन भावनाओं के ज्वार में मनुष्य बहरकर मनुष्यता की सीमारेखा पार कर जाता है और दरींदों जैसी हरकत कर बैठता है। इस साम्प्रदायिकता की बीमारी में मनुष्य घुट–घुटकर अपने आप को तबाह कर लेता है, सम्प्रदाय मनुष्य की दिमागी हालत को बिगाड़ देता है, इससे मनुष्य जानवरों जैसी हरकत करने लगता है। इस संदर्भ में यह विचार नितांत उल्लेखनीय है 'घृणित स्वार्थ के इस बिन्दु पर साम्प्रदायिकता ग्रस्त समाज की खोखली और स्वयंसेवी अध्यात्मिकता भी नंगी हो जाती है।

'तमस' की साम्प्रदायिकता के पीछे छिपे हुए उन घिनौने चेहरों को बेनकाब करते हुए रमेश उपाध्याय ने अपने विचारों को व्यक्त किया है। साम्प्रदायिकता लड़ाई में वर्ग संघर्ष नहीं होता, बल्कि शोषक शोषित सब लोग सम्प्रदाय के आधार पर नकली तौर पर विभाजित हो जाता है, यह दिखाने के लिए लेखक कम्युनिष्टों की उन असफल कोशिशों का जिक्र करता है, जो इन दोनों सम्प्रदायों में सुलह कराने का प्रयत्न करती है। लेकिन उनके प्रयत्नों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। साथियों में नहीं लड़ सकते। देवदत्त को जब यह खबर मिलती है, कि मजदूरों की बस्ती में भी फिसाद हो गया है और दो सीख बढई मारे गए अहि, तो उसका सिर झुक जाता है और उसे लगता है कि अगर मजदूर आपस में लड़ सकते हें तो यह विष बहुत गहरा असर कर चुका है और एकता के उसके प्रयत्न पानी पर खींची लकीर बन जाते हैं। इन विचारों से यह पता चलता है

कि वर्ग संघर्ष ने होकर सम्प्रदाय के आधार पर लोग नाटकीय तौर पर अलग होने का प्रयास करते हैं। तमस के चरित्र उन्हीं घिनौने चेहरों को बताने की चेष्ठा करते हैं।

'तमस' में भीष्म साहनीजी साम्प्रदायिक विकास को उजागर करते हुए, उस समस्या के पीछे छिपी हुई उन बुराईयों की तुंथियों को खोलते हैं जो अंग्रेजी साम्राज्यवादी विसंगतियों को प्रकट करती है। भीष्मजी के उपन्यासों में अंग्रेजी साम्राज्यवाद, भारतीय सामन्तवाद और पूँजीवाद के विरूद्ध सामान्य जनसंघर्ष करते हैं। प्रगतीशील उपन्यासों में जन सामान्य के लिए नव निर्माण की एक संघर्षमय प्रेरणा प्राप्त होती है। समाजवादी उपन्यास जनवादी परम्परा को विकासोन्मुख कर पूँजीवादी व्यवस्था और सामाजिक विषमताओं के विरोध में संघर्षत की प्रेरणा जाग्रत करते हैं।

जोगेन्द्र सिः वर्मा जी के विचार 'तमस' के बारे में स्पष्ट है। भारत की आजादी के दौरान की लम्बी अवधि के बाद 'तमस' इस रूप में व्यक्त होता है, तो इसका यही कारण रहा है। साम्प्रदायिकता की त्रासदी का यह दर्द रचनाकार के अवचेतन में पकता रहा, उसका निरिक्षण परीक्षण होता रहा, उस अनुभव के अनावशक पक्श छूटते गए तथा आवश्यक तत्व उसमें मिलते गए और परिपक्व होने की स्थिति में वह अभिव्यक्तियों के लिए उद्धेलित हो उठा। दूसरे उस अनुभव की प्रासंगीकता भी समाप्त नहीं हो गई थी, साम्प्रदायिकता की समस्या बंटवारे के साथ खत्म नहीं हो गयी, वह मनोवृति, यह खैया आज भी हमारे समाज में रह रहकर अपना भीषण रूप दिखाते हैं। आदमी जो कुछ लिखता है, वह कहीं न कही तो उसके अपने काल से जुडता है, उसके अपने काल के संगन में होता है, भले ही वह मध्ययुग के बारे में लिखे। 'तमस' में रचनाकार के स्मृति बिम्ब इतना व्यापक परिदृष्य ग्रहण कर लेते हैं कि रचनाकार का अतीत बोध वर्तमान बोध में रूपांतरित होता जाता है। रचनाकार के विचार की गतिशिलता अतीती और वर्तमान में एक रचनात्माक संवाद स्थापित कर देती है।

साम्प्रदायिकता के संबंध में भीष्मजी के विचार उल्लेखनीय है। जहां तक साम्प्रदायिकता का सवाल है, उसमें पेचीदगियाँ आ गई। अब तो कश्मीर के मामले को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देखा जाने लगा है। कभी हमें अमेरिका से नसीहत मिलती है तो कभी कहीं से कि ऐसा नहीं करो ऐसा नहीं करो ऐसा करो। जहां हजारों लोग मारे जाएँ और ये आतंकवाद थमने में न आए, तो जाहिर है कि यह देश को खोखला करने वाली बात है। हमारे अपने अंदर धर्मांधता और ज्यादा आगे बढकर वन साईड हो गई और उसी तरह से आतंक की बाते करने लगे जैसी कश्मीर में होती है। यह भी हमारे देश के लिए अच्छा नहीं है। हमारा देश बहुजातिय, बहुधर्मी, बहुभाषी देश है और जनतंत्रात्मक व्यवस्था के आधार पर ही टीक सकता है पनप सकता है, वरना हम आपस में कटते मरते रहेंगे। हमने कुछ नहीं पाया। हमारा समस्याएँ बढ ही रही है।

अंधश्रद्धा

जीवन को जीने के लिए विश्वास बहुत बड़ी वस्तु है। विश्वास के अभाव में जीवन जीते जी नरक बन जाता है। वास्तव में सदविश्वासों का अभाव ही अन्धविश्वासों को जन्म देता है। ऐसे अज्ञानपूर्ण विश्वासों को पल्ले बांध लेना कि जिनका व्यवहार जगत से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, जो अनेक प्रकार की मानसिक एवं बौद्धिक विकृतियों के प्रती है उन्हें अन्धविश्वास कहते हैं। हमारे विचार में देश–विदेश में आज जो अनेक प्रकार के अन्धश्रद्धा प्रचालीत है। लेकिन आधुनिक काल में समाज इतना आगे बढ़ चुका है, हम इकसवी सदी की ओर जा रहे है, फिर भी सामान्य आदमी की मनोवृति वैसी ही है। मनुष्य में श्रद्धा होनी चाहिए किन्तु अंधश्रद्धा नहीं होनी चाहिए। भीष्मजी ने अपने उपन्यासों में अंधश्रद्धा के विविध रूपों को दिखाया है।

'झरोखे' उपन्यास में इस उपन्यास के नायक के पिता हमेशा शकुन अपशकुन की बातों को अंधविश्वास मानते हैं। एक वक्त घार में आर्य समाजी पंडित जब उनके बेटे के यज्ञोपवईत के समय सारे पैसे बटोरकर ले जाते है हो नायक की माँ उस आर्यसमाजी पंडित के हरकतों से क्रोधित हो जाती है; तब नायक के पिता अपने पत्नी को समझाते हुए शुभ बोलने के लिए कहते हैं। तब नायक को अचरज होता है 'शगुन अपशगुन की बात आज पिताजी कैसे करने लगे हैं। वह तो इन बातों को अंधविश्वास कहा करते हैं। क्या माँ को चुप कराने के लिए ही पिताजी हमारे स्वास्थ्य का वास्ता डाल रहे हैं ? इसी उपन्यास में नायक अपने भाई को बता देता है कि उसने साईकल चलाना भी छोड दिया है। उसका कारण बताते हुए कहता है 'किताब में लिखा है साईकिल चलाओं तो स्वप्नदोष ज्यादा होता है। यह भी एक प्रकार का अंधविश्वास ही है और इसके कारण वह रात–रात सोता ही नहीं है।

निष्कर्ष

अतः यह कहा जाता है कि धर्म के नाम पर लोग या धर्म को न जाननेवाले पंडित प्रकार से भोले लोगों को धर्म भीरु बना देते हैं। और यह जो धर्म है, आज तक कोई भी इस धर्म का उपयोग या इसको परिभाषित नहीं कर सके हैं। इतने होने के बाद भी इस प्रकार की धर्मांधता के कारण उदभूत हुई धार्मिक समस्याओं का चित्रण भीष्म साहनीजी के उपन्यास में हमें देखने को मिलते हैं। साहित्य से साम्प्रदायिकता क्या है ? सम्प्रदाय की उत्पत्ती याने क्या ? उसका अर्थ क्या है ? साहित्य से साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध क्या और कहाँ तक माना जाता है। इन सब बातों का विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि यह समस्या तो सदियों से थी लेकिन देश विभाजन की समस्या यह समस्या हमें अधिक माता में देखने को मिलती है। और भीष्म जी ने उस वक्त होने वाले धार्मिक समस्या को पूरी तरह से दिखाया है और उसी के साथ उस तरह की समस्या होने के बाद उसके परिणाम क्या होता है, यह भी इस उपन्यासों में हमें देखने को मिलता है।

मनुष्यों में पायी जाने वाली धार्मिक अन्धश्रद्धा की समस्या को भी भीष्म साहनी जी ने झरोंके, कडियाँ, मय्यदास की माडी आदि उपन्यासों के माध्यम से दिखाया है। इस प्रकार की अंधश्रद्धा के कारण मनुष्य में काम करना छोड कर अपने कर्तव्य से हटकर वह दैववदी हो जाता है। और मनुष्यों में काम करने की वृत्ति नष्ट होकर उनमें आलस्य बढता है।

यहीं बात लगभग बली प्रथा एवं मनौतियों के माध्यम से भी देखने को मिलती है। मनुष्य अपने स्वार्थ साधन के लिए अपनी जान बचाकर पशु की जान ले लेना, और ईश्वर को खुश रखने का प्रयास करना था। उस प्रथा को किसी प्रकार का लालच मनौतियों के माध्यम से दिखाना भीष्मजी ने इसके परिणामों को बसन्ती, झरोखे, कुन्तो आदि उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

उसी तरह धर्म के नाम पर अधर्म की बात भी साहनीजी ने बसन्ती उपन्यास में दिखाया है। इस प्रकार धर्म हम कह सकते है कि धार्मिक समस्या के अन्तर्गत मुख्य रूप से साम्प्रदायिकता के समस्या का चित्रण भीष्म साहनी जी ने सफलतापूर्वक किया है।

सहायक ग्रंथ सूची

1. राजेश्वर सक्सेना एवं प्रताप ठाकूर–भीष्म साहनी व्यक्ति और रचना
2. डॉ0 सुरेश बाबर–भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन
3. डॉ0 भारत कुचेकर – भीष्म साहनी व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4. रवीन्द्र गासो – भीष्म साहनी की औपन्यासिक चेतन